भाषाई अस्मिता और हिन्दी का राष्ट्रीय संदर्भ

डॉ० जितेश कुमार

विभिन्न कोशों से इतर यदि 'अस्मिता' का वर्तमान प्रचलित अर्थ देखा जाए तो यह 'पहचान' है या 'आइडेंटिटी' है। हिन्दी साहित्य में 1950 के बाद 'अस्मिता' के अहंकारवाले अर्थ का अचानक परिवर्तन हो जाता है। आज हिन्दी क्षेत्र में अस्मिता का सवाल या उसका संकट क्रमशः पहचान का सवाल या उसका संकट ही है।

वर्तमान में व्यक्ति और उससे निर्मित समाज को अस्मिता प्राप्ति के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ रहा है। अस्मिता का प्रश्न जहाँ उलझता नजर आता है वहीं उसे प्राप्त करना तो और भी कठिन प्रतीत होता है। वास्तव में अस्मिता, व्यक्ति या समाज को खुद को प्रकट करना है। सामाजिकता के विभिन्न स्तरों में व्यक्ति स्वयं को कहाँ स्थापित पाता है? इसकी संरचना ज्ञात करना ही अस्मिता है। साहित्यिक क्षेत्र में अस्मिता विभिन्न चीजों के साथ जुड़कर अपना अलग अर्थ व्यक्त करती है। नारी के साथ जुड़कर नारी अस्मिता, राष्ट्र से जुड़कर राष्ट्रीय अस्मिता, भाषा के साथ भाषाई अस्मिता, भारत के साथ जुड़कर भारतीय अस्मिता आदि। वर्तमान में अस्मिता की अवधारणा समय की मांग है। इसके पीछे यह कहना उचित होगा कि जब-जब अस्मिता खतरे में पड़ती है,उसे लेकर विचार-विमर्श करना आवश्यक हो जाता है।

भाषा के संदर्भ में अस्मिता का रूप राष्ट्रीय हो जाता है। भाषा की ताकत सर्वोपरि है। इसमें जोड़ने और तोड़नेवाली दोनों ही शक्तियाँ है। वास्तव में इसके पीछे जो समस्या है, वह है-सामाजिक अस्मिता। समाज में भाषा पूरी तरह से भावनात्मक होती है। इसी भावना के आधार पर यदि वह एकता का कारण है तो दूसरे समुदायों से अलग होने का कारण भी बनती है। रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में "भाषा की विघटनकारी शक्ति अगाध है,इसीलिए इसे गोली भरे बंदूक की तरह इस्तेमाल करना भी संभव है।"[1]

भाषा स्वयं में मुक्त है। समाज उसके साथ सतत रूप से जुड़ा रहता है। "भाषा स्वयं में धार्मिक या अधार्मिक नहीं हुआ करती, न ही उसकी व्याकरणिक व्यवस्था में जातीयता का कोई पुट मिला हुआ करता है। उसको धार्मिकता या जातीयता के रंग में रंगने का काम उसके प्रयोगकर्ता किया करते हैं।"[2] चूँकि भारत एक बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है। इसीलिए हमारी सामाजिक अस्मिता और भाषाई अस्मिता भी अलग-अलग है। 1652 मातृभाषाओं, 200 वर्गीकृत भाषाओं और 10 लिपियों का प्रयोगकर्ता भारत, की अस्मिता भी अलग होना स्वाभाविक ही है।

यदि हम हिन्दी की बात करें तो राष्ट्रीय दृष्टि से यह अनेकता में एकता की गुजारिश करती है। हिन्दी भाषा की व्यापकता और व्यवहार क्षमता का अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि इसे मातृभाषा के रूप में बोलनेवालों की संख्या सर्वाधिक है वहीं अन्य भाषा के रूप में भी इसे व्यवहार करनेवाले अधिक हैं। हिन्दी की अस्मिता आज अधिक सुदृढ़ है। इस बाबत श्रीवास्तवजी भी मानते हैं- "इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि हिन्दी के जनपदीय संदर्भ के आधार पर केवल उसकी विभिन्न बोलियों के प्रयोक्ता ही अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता का अनुभव नहीं करते,वरन विभिन्न क्षेत्रीय भाषाभाषियों को भी इसमें सामाजिक संस्कृति और सर्वसामान्य आचार-विचार का संस्कार प्राप्त होता है।"[3]

आज जबकि देश में सामाजिक गतिशीलता बढ़ती जा रही है, उस स्थिति में किसी एक भाषा को बरकरार रख पाना किसी के लिए भी चुनौती ही है। छोटी-छोटी भाषाओं के साथ हिन्दी का सामंजस्य न केवल आवश्यक है,बल्कि काफी महत्वपूर्ण भी है। सही तो यही है कि हिन्दी और अन्य राष्ट्रीय भाषा को खंडित करने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। चूँकि देश में भाषायी विविधता है इसीलिए हर भाषा की आंतरिक अखंडता

डॉ. जितेश कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
के.बी. झा कॉलेज, कटिहार

भी है। भाषा के साथ राजनीति के घालमेल से उसमें संकीर्णता का आ जाना स्वाभाविक है। राजनीतिक स्वार्थ और क्षेत्र की राजनीति करनेवाले भाषा को अस्मिता का प्रश्न बनाने से चूकते नहीं हैं। भारत में राज्यों का पुनर्गठन इसका प्रमाण है कि भाषा की अस्मिता कितनी प्रबल है।

हिन्दी क्षेत्र में आज हिन्दी के समक्ष अस्मिता का संकट आ पड़ा है। इस क्षेत्र में यह सभी को सामाजिक रूप से जोड़नेवाली भाषा के रूप में स्थापित नहीं हो पाई है। शंभुनाथजी के शब्दों में-"हिन्दीवालों को हिन्दू या मुसलमान होने में,ब्राह्मण,क्षत्रिय,यादव या दलित होने में, मर्द होने में, किसी खास जिले का होने में, जनेऊ और मूँछ रखने में गर्व है। उनमें हिन्दी होने का जातीय अहसास प्रभेदों में फँसे होने की वजह से पनप नहीं पाया है। वे छोटे-छोटे स्वार्थों की वजह से सामुदायिक झुंडों में बंटे हैं और एक-दूसरे के प्रति घृणा से भरे हुए हैं।"[4]

हिन्दी क्षेत्र यद्यपि समवेशी है,लेकिन उसमें स्थानीय विविधता है। संकीर्णताएँ भी हैं, लेकिन उदारवादी होने के प्रमाण भी मौजूद हैं। यहाँ शम्भुनाथजी के शब्दों को समझना और भी आवश्यक हो जाता है। जब वे लिखते हैं-"हिन्दी क्षेत्र में आजकल धार्मिक,जातिवादी और स्थानीय कूपमंडूकता ही नहीं बढ़ने लगी है, अंग्रेजी मिजाज और पश्चिम का अंधानुकरण भी तेजी से बढ़ रहा है। अब अंग्रेजी से रंगी-पुती हिन्दी माँएँ अपने दो-तीन साल के बच्चे से सिर्फ अंग्रेजी में बात करती है,उसके पास मातृभाषा के शब्द फटकने नहीं देती।"[5]

हिन्दी क्षेत्र के लोगों को सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक होगा कि हिन्दी की उन्नति न केवल क्षेत्रीय उन्नति है, बल्कि राष्ट्र की तरक्की और सुधार के लिए भी हिन्दी की जरूरत है। हिन्दी आज राष्ट्रीय अस्मिता का सबसे मजबूत आधार है। हिन्दी राजभाषा से अधिक संपर्क भाषा के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है। इस अर्थ में जब भाषाई अस्मिता की बात स्वीकार करनी हो, तो हिन्दी आज जिस स्थान पर खड़ी है, उसके सामने अन्य भाषा बौनी हैं।

भाषाई अस्मिता के स्वरूप को समझना हिन्दी क्षेत्र के लिए बहुत आवश्यक है। हम प्रत्येक चार वर्ष पर विश्व हिन्दी सम्मेलन करते हैं। हिन्दी को बढ़ावा देने का संकल्प लिया जाता है। बताया जाता है कि यह विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। लेकिन हिन्दी क्षेत्र की नयी पीढ़ी इसे मानने से इंकार कर देती है। उन्हें हिन्दी में अधिक रुचि नहीं रह गई है। इस क्षेत्र में शिक्षा का माध्यम अब अंग्रेजी होती जा रही है। हिन्दी में हमारा जो भावनात्मक लगाव होना चाहिए, वह बन नहीं पा रह है। आधुनिक पीढ़ी को भाषाई अस्मिता का अहम नहीं रह गया है। वैश्वीकरण के परिवेश में उसे अंग्रेजी अधिक भा रही है। इसके लिए न केवल व्यक्ति,बल्कि संस्था और समुदाय सभी जिम्मेदार हैं।

सिनेमा, मीडिया और मनोरंजन की दुनिया में हिन्दी का एक नया रूप सामने आ रहा है और इसी भरोसे हिन्दी क्षेत्र के लोग इतरा भी रहे हैं कि हिन्दी का वर्चस्व बढ़ रहा है। इस बाजार के प्रभाव में हिन्दी की चाल मस्त हाथी की तरह है। यदि हिन्दी का प्रभाव बढ़ा ही है, तो यह सोचने की बात सामने क्यों आती है कि हिन्दी की राष्ट्रीय और सामाजिक ताकत लगातार घटती जा रही है? हम हिन्दी के भरोसे अनुसंधान नहीं कर पा रहे हैं, बहस नहीं कर सकते हैं, राजनयिक वार्ताएं और दफ्तर तो चल ही नहीं सकती हैं। यहाँ शंभुनाथजी मानते हैं- "आज अक्सर किसी भाषा की ताकत की पहचान इससे की जाती है कि वह बाजार में कितनी दौड़ सकती है। इसमें संदेह नहीं कि आज बाजार में हिन्दी का एक दमकता रूप है। कहा भी जाता है कि हिन्दी बाजार में पैदा हुई, बाजार में पली-बढ़ी। हम आत्मनिरीक्षण कर सकते हैं कि क्या इस हिन्दी को बाजार की सूचनात्मक और चुलबुली भाषा के रूप में पाकर संतुष्ट हैं या संवेदना और ज्ञान की भाषा के रूप में इसकी कमजोर स्थिति देखकर विचलित हैं। किसी भाषा के साथ सबसे बड़ा विश्वासघात उसे सूचना और मनोरंजन की भाषा में सीमित कर देना है।"[6]

राष्ट्रीय संदर्भ में आज हिन्दी की अस्मिता उर्दू और अंग्रेजी से भी जुड़ी हुई है। बीसवीं सदी के आरंभ से ही लगातार हिन्दी भाषा को अपनी अस्मिता प्रकट करनी पड़ी है। आज जबकि प्रौद्योगिकी अपने चरम पर है तो भाषा के विकास की रफ्तार भी तेज है। लेकिन इसमें भाषा का सम्मिश्रण भी होता जा रहा है। हिन्दी के साथ भी लगभग यही स्थिति है। उचित-अनुचित से इतर हमें हिन्दी के शब्द भंडार को बढ़ाने के लिए अन्य भाषा के शब्दों को भी समाहित करने से गुरेज नहीं करना चाहिए। वहीं शंभुनाथ जी इस बात से असहमत हैं। वे मानते हैं कि "हिन्दी में अंग्रेजी के शब्दों की धड़ल्ले से मिलावट, पश्चिमी चटपटेपन और तेज गति का बुरा असर अब सामाजिकता और पारिवारिक भावनाओं पर भी दिखने लगा है। अंग्रेजी की संस्कृति या पॉप संस्कृति एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का दु:ख-दर्द महसूस करने नहीं देती। अपनी मातृभाषा छोड़नेवाले या उससे धीरे-धीरे दूर हटकर अंग्रेजी अपना लेनेवाले व्यक्ति रिश्ते-नातों का अहसास खोने लगते हैं। यही वजह है कि अब रिश्ते-नाते रूखे और औपचारिक हो उठे हैं।"[7] लेकिन यह कहना उचित नहीं होगा कि इस अपसंस्कृति में किसी भाषा का योगदान है। भाषा हमारे व्यवहार को कैसे बदल सकती है? क्या कोई हिन्दी बोलना शुरू

कर दे तो उसका सम्पूर्ण परिष्करण हो जाएगा? ऐसा नहीं है। हमने अन्य संस्कृति की बुरी चीजों को अपनाना शुरू कर दिया है। यही मूलभूत कारण है। आज हिन्दी को छोड़ने और अंग्रेजी को अपनाने से हमारा सामाजिक स्टेटस स्वीकार किया जा रहा है। यही हिन्दी की सबसे बड़ी कमजोरी है।

हिन्दी के अस्तित्व को समझना बिलकुल आसान है। लेकिन यह चिंता का विषय है कि हिन्दी की पहचान कई बुद्धिजीवी हिन्दू राष्ट्रवाद से जोड़ लेते हैं। हिन्दी का साहित्य इस बात का गवाह है कि हिन्दी कभी भी धर्म से नहीं जुड़ी है। हिन्दी, भाषा के रूप में समस्त भारत की जाति का बोध कराती है। इसके लिए हिन्दीभाषी को भी गर्व अनुभव करना होगा। विभिन्न स्थितियों को समझते हुए उससे सामंजस्य बनाना होगा। सारत: हिन्दी की अस्मिता न केवल हिन्दीपट्टी की भाषाई अस्मिता है बल्कि देश की उन्नति की बड़ी अस्मिता है।

संदर्भ

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाई अस्मिता और हिन्दी, पृष्ठ-19, संस्करण-2016,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वही, पृष्ठ-22
3. वही, पृष्ठ-55
4. शम्भुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी, पृष्ठ-64-65, संस्करण-2018, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. वही, पृष्ठ-65
6. वही, पृष्ठ-69
7. वही, पृष्ठ-68